SEMESTER – IV

(Development of Indian Theater)

EC – 02

CONTEMPORARY INDIA

(2019 - 2021)

E-Content 01

- Unit – II : Topic
  - A. भारतीय रंगमंच : उद्भव एवं विकास.

Vetted by :

प्रो0 (डॉ0) सुरेंद्र कुमार

विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग

पटना विश्वविद्यालय, पटना

संपर्क : 9835463960

डॉ0 विद्यानंद विधाता

अतिथि शिक्षक, इतिहास विभाग

पटना विश्वविद्यालय, पटना

संपर्क : 9472084115

भारतीय रंगमंच : उद्‌भव एवं विकास

इस पाठ में हम प्रस्तुति कला के एक अभिन्न अंग, नाट्य या रंगमंच का अध्ययन करेंगे। अध्ययन की दृष्टि से पाठ को नाटक अथवा रंगमंच की दो धाराओं को अलग–अलग खंड मं प्रस्तुत किया गया है ताकि अध्ययन में सहजता बनी रहे। प्रथम खंड 'क' में हम पूर्वऔपनिवेशिक काल में संस्कृत नाटक तथा रंगमंच के उद्‌भव, विकास तथा अवनति का अध्ययन करेंगे और प्रमुख नाटककारों और उनके नाटकों के बारे में चर्चा करेंगे। द्वितीय खंड 'ख' में हम भारतीय लोकनाटक परंपरा का विस्तृत अध्ययन करेंगे।

रंगमंच (नाटक) जीवन की तरह विशाल कला है जिसमें जीवन के सभी रंगों व रसों का मेल है। सभी प्रस्तुति कलाओं में यह सर्वोत्तम है क्योंकि इसमें नृत्य, गायन तथा वादन को एक साथ प्रस्तुत किया जाता है। नाटक का प्रत्येक अंक मानव जीवन की कहानी कहता है। नाटक संपूर्ण ब्रह्माण्ड की सभी संवेदनाओं, संसार के सभी सात भौगोलिक विभेदों तथा लोगों के व्यवहारों एवं क्रियाओं की अनुकृति है। जब लोगों के स्वभावों को सुख–दुःख के साथ भौतिक माध्यम जैसे अभिनय के द्वारा प्रस्तुत किया जाता है तो इसे नाटक कहते हैं। नाट्यशास्त्र के अनुसार संपूण ब्रह्माण्ड नाटक का विषय है। संपूर्ण संसार दो वस्तुओं से बना है – मानव व उसका पर्यावरण। मानव को आलंबन तथा पर्यावरण को उद्दीपन कहा गया है। इस तरह नाटक मानव प्रकृति तथा चरित्र का परिणाम है। इस प्रकार सामान्य शब्दों में नाटक मानव जीवन की एक अनुकृति है।

कला हमेशा से प्राचीन भारतीय संस्कृति का अभिन्न हिस्सा रही है। कहते हैं भारतीय संस्कृति शाश्वत है, इसका अविछिन्न विकास होता चला आ रहा है। प्राचीन भारत में कला के अनेकों रूपों का विकास हुआ जिसमें प्रस्तुति कला एक महत्त्वपूर्ण अवयव है। प्रस्तुति कला के तीनों रूपों – नृत्य, संगीत तथा रंगमंच का विकास प्राचीन भारत में हुआ। विद्वानों का ऐसा मानना है कि इनमें से नृत्य कला का उदय एवं विकास प्राचीनतम है। मानव सभ्यता का विकास ही नृत्यकला के विकास की कहानी कहता है। पाषाणकाल से ही इस कला के प्रमाण हमें प्राप्त होने लगते हैं। पुरातात्त्विक साक्ष्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि नृत्य एवं संगीत का विकास पाषाणकाल में हो चुका था। अनेक गुफाओं से प्राप्त शैल चित्र यह प्रमाणित करते हैं कि प्राचीन काल के लोग इन कलाओं से न केवल परिचित थे, बल्कि ये कलाएँ उनके जीवन का अभिन्न हिस्सा थीं। परंतु लिखित साक्ष्यों के अभाव में पाषाणकाल तथा आद्यकाल के लोगों की संस्कृति, जीवन एवं कला पुरातात्त्विक अवशेषों के विश्लेषण तथा हमारी कल्पना की उड़ानों तक ही सीमित है। साहित्यिक स्रोतों के आगमन ने भारतीय कलाओं को और अधिक समृद्ध तथा विस्तार प्रदान किया।

भारत में रंगमंच तथा नाटक की परंपरा की शुरूआत कब हुई, निश्चयपूर्वक कहना मुश्किल हैं। नाटक को भारतीय परंपरा में कथक भी कहा गया है जिसकी संख्या दस है – नाटक, प्रकरण, भाण, व्यायोग, समवकार, डिम, ईहामृग, अंक, वीथी, प्रशान। रंगमंच के उदय के संबंध में अनेक सिद्धांत प्रतिपादित किए गए जिससे कई गहरे विवाद उत्पन्न हुए।

अधिकांश विद्वानों के अनुसार भारतीय रंगमंच की परंपरा की शुरूआत कब हुई, यह निश्चयपूर्वक कहना काफी मुश्किल है। विद्वानों के अनुसार रंगमंच/नाटक का उदय चार प्रकार की संस्कृतियां के प्रभाव में हुआ –

(*i*) पूर्व वैदिक संस्कृति

(*ii*) आर्य/वैदिक संस्कृति

(*iii*) बाह्य संस्कृति एवं सभ्यताओं के प्रभाव में

(*iv*) लोक संस्कृति के प्रभाव में

भरत द्वारा रचित प्रख्यात ग्रंथ नाट्यशास्त्र को 'पॉचवॉ वेद' की संज्ञा प्राप्त है जिसकी रचना तीसरी और पांचवीं सदी के बीच मानी जाती है। नाट्यशास्त्र में रंगमंच की रचना और उसके प्रबंध के उपायों का भी वर्णन किया गया है। नाट्यशास्त्र भी अप्रत्यक्ष रूप से यह स्वीकार करता है कि प्राचीन भारत के अनेक संप्रदायों से रंगमंचीय कला का जुड़ाव था। भरत कहते हैं कि संगीत वाद्यों का वादन और नृत्य यक्ष, नाग, गुहिका, दैत्य, दानव, राक्षस, लोकपाल, रूद्र तथा उनके गण जिसमें भूत भी शामिल है, को संतुष्टि प्रदान करता है। इनकी प्रतिष्ठा में कहा तथा जत्रा जैसे त्योहारों का आयोजन किया जाता था जिसमें रंगमंचीय मनोरंजन की भी व्यवस्था की जाती थी। हॉरोविज् की तरह अनेक विद्वान भारतीय रंगमंच के विकास में कृष्ण उपासना का योगदान मानते हैं। अधिकांश विद्वान कृष्ण उपासना को पूर्व वैदिक काल का मानते हैं, इसकी उपस्थिति आर्यों के आगमन के पूर्व से ही सूरसेन प्रदेश में पाई जाती थी। शायद इसी

कारण कृष्ण को ऋग्वेद में असुर की संज्ञा दी गई। महाभारत भी यह कहता है कि कृष्ण की किंवदंगी सनातन और प्राचीन है। प्रारंभिक नाटककार भास ने तरह नाटकों की रचना की जिसमें अधिकांश नाटक कृष्ण संप्रदाय को समर्पित हैं।

मध्यपाषाणकाल तथा आद्यकाल की अनेक गुफाओं से प्राप्त साक्ष्य भी इस इशारा करते हैं कि नाटक का विकास आर्यों के आगमन से पूर्व हो चूका था। लखजौर से प्राप्त नृतकों का समूह, जौरा से कलाबाज नृतक, लखजौर से गायक नृतक तथा मृगश्रृड्ग के मुखौटे वाला मानव, भीमबेतका से प्राप्त विचित्र मुखौटा तथा कथोटिया से प्राप्त बीन बजाता हुआ संगीताकार, लखजौर से प्राप्त मंच पर नृत्य करता नृतक, मध्यपाषाकालीन रामचज से प्राप्त नृतक जिसने सिंह के कपड़े और सिर पर आभूषण पहना है, मध्यपाषाकालीन जमोरा से प्राप्त नृतक जो पक्षी जैसे कपड़े तथा सिर पर आभूषण पहने हुए है, मध्यपाषाणकालीन भीमबेतका से प्राप्त नटराज नृतक, लखजौर से प्राप्त मुखौटा लगा शिकारी तथा जानवर, भीमबेतका से प्राप्त नृत्य तथा संयुग्मन (मैथुन) तथा कथोटिया से प्राप्त लैंगिक नृत्य जैसे अनेक पुरातात्त्विक साक्ष्य इस बात का द्योतक हैं कि नाटक तथा उससे संबंधित अनेकों लक्षयों की शुरूआत मध्यपाषाणकाल से ही हो चुकी थी। कालांतर में भी इसका विकास हुआ जो ऐतिहासिक काल में विस्तृत तथा समृद्ध रूप में उभर कर सामने आया। लिखित पंरपरा के आगमन के बाद इन परंपराओं को लिपिबद्ध किया गया।

संदर्भ– सूची

1. ए.बी. कीथ (अनुवाद – डॉ. उदयभानु सिंह), संस्कृत नाटक, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1971

2. एम.एल. वरदपांडे एवं सुनील सुभेदार, दी क्रिटिक ऑफ इंडियन थियेटर, युनिक पब्लिकेशन, दिल्ली, 1981